International Journal of Applied Research 2017; 3(2): 09-10

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(2): 09-10
www.allresearchjournal.com
Received: 03-12-2016
Accepted: 04-01-2017

डॉ0 रविन्द्र कुमार
पीएच.डी., चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, भारत।

Correspondence
डॉ0 रविन्द्र कुमार
पीएच.डी., चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, भारत।

ऋग्वेद में रूपक परक बिम्ब विवेचना

डॉ0 रविन्द्र कुमार

ऋग्वेद में हमे काव्य शास्त्रीय तत्वों की विवेचना के संदर्भ में रूपक की भी यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रचुरता प्राप्त होती है। जिसे हम अग्रलिखित प्रकार से जान सकते हैं।

प्रस्तुत मन्त्र में अविद्या के लिए अन्धकार का बिम्ब आया है। यहां कहा गया है कि अविद्यारूपी अन्धकार का नाश अन्तर्यामी परमेश्वर कर देता है[1]।

आत्मा के लिए इन्द्र का रूपक दिया गया है। अर्थात् यह आत्मारूपी इन्द्र जब शरीर से निकलता है, तो वह सबको रुलाता है। यहां रूपक अलंकार के साथ बिम्ब का भी निर्माण हुआ है[2]।-

ब्रह्मणस्पति ने मेघों द्वारा छुपाये गए सूर्य किरणरूपी खजाने को प्रकट किया। यहां रूपक के साथ-साथ किरणों के लिए खजाने का जो बिम्ब प्राप्त होता है वह भी सुन्दर है[3]।-

ब्रह्मणस्पति के पास बुद्धिरूपी एक उत्तम धनुष है, जिससे वह ज्ञानरूपी बाणों को बुद्धिमानों के कानों तक पहुंचाता है। रूपक अलंकार का उत्तम समायोजन इस मन्त्र में जहां प्राप्त होता है वहीं बुद्धि एवं ज्ञान के लिए क्रमशः धनुष एवं बाण का बिम्ब विधान बहुत सुन्दर है[4]।-

ऋग्वेद में रूपकों की कमी नहीं है, इसमें नूतन और सुन्दर रूपक यत्र-तत्र समाहित हैं यहां यह रूपक जहां एक ओर रूपकत्व की सृष्टि को सृजित करता है वहीं दूसरी ओर बिम्ब की रचना को सुन्दर बनाता है। सूर्य मेघों मे जलरूपी वीर्य स्थापित करके उन्हें मानों गर्भ से युक्त बनाता है। तब उन मेघों में परस्पर संघर्ष से उनका पुत्र रूप विद्युत उत्पन्न होता है। यहां मेघ एवं विधुत् के लिए क्रमशः गर्भिणी एवं पुत्र का बिम्ब, बिम्ब की रचना को बिम्बित करते हैं[5]।-

प्रस्तुत मन्त्र में सूर्य को लम्बी-लम्बी किरणों रूपी हाथों वाला कहकर सम्बोधित किया गया है। यहां रूपक के द्वारा सूर्य की किरणों के लिए हाथों का बिम्ब प्राप्त होता है, जो बड़ा ही शोभनीय है[6]।-

अन्धकार रूपी कपड़े को बुनती हुई रात्री एवं अन्धकार के लिए क्रमशः कपड़े एवं बुनने वाले (दर्जी) का बिम्ब प्राप्त होता है। वहीं रूपक के द्वारा यह विषय और अधिक शोभायमान हो गया है[7]।-

अग्नि को ऋग्वेद में घुलोक की पताका रूप में रूपायित किया गया है। यहां रूपक के साथ-साथ अग्नि के लिए जो पताका (झण्डा) का बिम्ब दिया है वह बड़ा श्रेष्ठ है पताका के बिम्ब से अग्नि की ऊर्ध्व स्थिति स्पष्ट हो जाती है। जिस तरह पताका उच्च स्थान पर स्थापित होती है, उसी तरह यह अग्नि भी ऊर्ध्व स्थिति वाला है[8]।-

अग्नि का वर्णन करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि यह अग्नि अरणियों में छिपा रहता है, और जब ये आपस में घिसती हैं, तो यह अग्नि 'ज्वालारूप' शरीर धारण कर लेता है। यहां रूपक के द्वारा ज्वालाओं के लिए शरीर का बिम्ब बड़ा ही सुन्दर एवं हृदयग्राह्य है[9]।-

सूर्य पृथ्वीरूपी धेनु में वृष्टि-जलरूपी अपने वीर्य का आधान करता है, तब वह पृथ्वी वृक्ष वनस्पति रूपी अपने पुत्रों को उत्पन्न करती हैं। यहां रूपक के माध्यम से जो बिम्ब की सृष्टि हुई है, वह बहुत ही सुन्दर है। यहां पृथ्वी के लिए धेनु तथा जल एवं वनस्पतियों के लिए क्रमशः वीर्य एवं पुत्रों का बिम्ब प्राप्त हुआ है[10]।-

वैश्वानर ने दुग्ध को गाय के थनरूपी गुहा में छिपा दिया। यहां रूपक के द्वारा थन के लिए गुहा का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है[11]।–

आत्मा को श्येन पक्षी के रूप में चित्रित किया गया है। यह श्येन पक्षीरूपी जीवात्मा सदा सरल मार्ग से जाने वाला है। यहां रूपक के माध्यम से जीवात्मा को श्येन के रूप में बिम्बित किया गया है। जिस प्रकार श्येन पक्षी सदा सरल मार्ग पर चलता है, उसी तरह यह जीवात्मां भी, यह इस मन्त्र का आशय है[12]।–

रूपक के माध्यम से शरीर के लिए रथ का एवं इन्द्रियों के लिए घोड़ों का बिम्ब आया है। प्राण अपने शरीर रूपी रथमें इन्द्रियां रूपी घोड़े जोड़ता है। यहां शरीर के लिए रथ एवं इन्द्रियों के लिए घोड़ों का बिम्ब प्राप्त हुआ है, रूपक के साथ यहां बिम्ब की शोभा और बढ़ गयी है[13]।– अन्धकार के लिए शत्रु का बिम्ब प्रयुक्त हुआ है। अग्नि जब चारों ओर दिशाओं में प्रज्जवलित होती है, तो यह अपने अन्धकार रूप शत्रु को नष्ट कर देता है। यहां रूपक के द्वारा इस बिम्ब की अभिव्यक्ति हुई है[14]।–

उपर्युक्त विवेचन एवं समीक्षण से रूपक की ऋग्वेद में योजना का प्रचुर रूप में प्रयोग सिद्ध होता है तथा काव्यशास्त्र के तत्वों का भी ऋग्वेद में स्थान सिद्ध होता है।

संदर्भ

1. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्न पावृधि।
   अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः।। ऋ6।7।1
2. उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन् त्स्तोमोष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
   तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्रवायवे सिस्रते न शुभ्राः।। ऋ. 3।11।2
3. अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां गुहा हितम्।
   ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यतउ आयन् तदुदीयुराविशम्।। ऋ. 6।24।2
4. ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पति र्यत्र वष्टि प्रतदश्नोति धन्वना।
   तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः।। ऋ. 8।24।2
5. स ईं वृषाजनयत् तासु गंर्भ स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति।
   सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष।। ऋ. 13।35।2
6. विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति।
   आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन्।। ऋ. 2।38।2
7. पुनः समण्यद् विततं वयन्ती मध्याकर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः।
   उत् संहापास्थाद् व्यृतूंरदर्धर रमतिः सविता देव आगात्।। ऋ. 4।38।2
8. शुचिंन यामान्निषिरं स्वर्हशं केतुं दिवो रोचनास्थामुषर्बुधम्।
   अग्निं मूर्धनं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत्।। ऋ. 14।2।3
9. नि वेवेति पलितो दूत आ स्वन्तर्महां श्चरति रोचनेन।
   वपूंषि विभ्रदभि नो वि चष्टे महद् देवाना मसुरग्त्व मेकम्।। ऋ. 9।55।3
10. या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन्।
    अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना मह श्चन्ति विभ्रतं वपूंषि।। ऋ. 3।56।3
11. प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति।
    यदुस्तियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रूपो अग्रं पदं वेः।। ऋ. 8।5।4
12. ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम्।
    सोमं भरद् दातृहाणो देवावान् दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय।। ऋ. 6।26।4
13. न धा स मामप जोषं जभाराऽभीमासा त्वक्षसा वीर्येण।
    ईर्मा पुरंधिरजहादराती रूत वाताँ अतरच्छुशुवानः।। ऋ. 2।27।4
    अपि च
    निर्युवाणों अशस्ती र्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः।
    वायवा चन्द्रेण रथेन पाहिं सुतस्य पीतये।। ऋ. 2।48।4
14. स जिह्वया चतुरनीक ऋज्जते चारु वसानो वरूणो यतन्नरिम्।
    न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम्।। ऋ. 5।48।5